आत्मानुशासन : एक परिशीलन

डॉ० दरबारीलाल कोठिया, वाराणसी

"आत्मानुशासन" जैन वाङ्मयका एक ऐसा ग्रन्थ-रत्न है, जिसे समग्रभावसे जीवनमें उतार लेने पर व्यक्ति स्वर्णके समान निर्मल एवं आदर्श बन सकता है। यह 'षट्खण्डागम' की धवला और 'कषायपाहुड' की जयधवला टीकाओंके कर्ता आचार्य वीरसेनके प्रतिभाशाली प्रधान शिष्य आचार्य जिनसेनके प्रज्ञावान विनीत शिष्य भदन्त गुणभद्राचार्यकी श्रेष्ठतम कृति है। धर्म, नीति और अध्यात्म इन तीनोंका इसमें प्रसाद गुण युक्त संस्कृत-भाषामें पद्य शैलीमें प्रतिपादन किया गया है।

इसपर एक संस्कृत-टीका है जो प्रभाचन्द्रकर्तृक है। ये प्रभाचन्द्र कौन हैं ? इस विषयमें विद्वानोंमें मत-भेद है। कुछ तो इन प्रभाचन्द्रको प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रके कर्ता तार्किक प्रभाचन्द्र बतलाते हैं और कुछ उनके उत्तरवर्ती १३वीं शतीके अन्तिम चरणमें होनेवाले प्रभाचन्द्रको इस टीकाका कर्ता मानते हैं। इसका विशेष ऊहापोह हमने अन्यत्र किया है।

संस्कृत-टीकाके अतिरिक्त आत्मानुशासन पर तीन हिन्दी टीकाएँ और एक मराठी टीका, ये चार टीकाएँ लिखी गयी हैं। इनमें सबसे प्राचीन पण्डित टोडरमलजी की हिन्दी-टीका है, जो राजस्थानकी ढूँढारी हिन्दीमें है और जो प्रकाशित भी हो चुकी है। दूसरी हिन्दी-टीका पण्डित वंशीधरजी शास्त्री सोलापुर द्वारा रची गयी है। यह हिन्दी-टीका खड़ी बोलीमें है और जैन ग्रन्थरत्नाकर, बम्बईसे प्रकाशित हुई है। तीसरी हिन्दी-टीका पण्डित बालचन्द्रजी शास्त्री कृत है, जो जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुरसे ई० १९६१ में प्रकाशित है। मराठी टीका स्व० ब्र० जीवराज गौतमचन्दजी दोशी सोलापुरने लिखी है, जो प्रायः पंडित टोडरमलजीकी हिन्दी-टीका पर आधृत है और जो उक्त जीवराज ग्रन्थमालासे वी० नि० सं० २४३५में प्रकाशित है।

प्रस्तुतमें समीक्ष्य है—पंडित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री द्वारा सम्पादित एवं श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान, वाराणसीसे प्रकाशित पंडित टोडरमलकृत ढूँढारी हिन्दी टीका सहित आत्मानुशासन। इस संस्करणकी अपनी अन्य विशेषता है। विद्वद्वर पंडित फूलचन्द्रजी ने इसके साथ जो प्रस्तावना दी है, वह विशेष लम्बी तो नहीं है, किन्तु उसमें जिन मुद्दों पर विमर्श किया गया है वह न केवल महत्त्वपूर्ण है, अपितु गम्भीरताके साथ ध्यातव्य भी है।

हम यहाँ उन मुद्दोंमेंसे दो-एक मुद्दोंका संकेत करते हैं—

१. आजकल मिथ्यात्व बन्धका कारण है या नहीं, इस विषयकी चर्चा विशेष हो रही है। जो मिथ्यात्वको बन्धका कारण नहीं मानते उनका समाधान पंडितजीने आगमके विपुल प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि आगममें मिथ्यात्वको सबसे सबल बन्धका कारण बतलाया गया है। उनका कहना है कि पहला गुण-स्थान मिथ्यात्व है। उसमें जिन १६ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है उनमें मिथ्यात्व ध्रुवबन्धिनी प्रकृति है। मिथ्यात्वरूप परिणामके साथ उसका बन्ध नियमसे होता ही रहता है। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करने-वाला जीव सम्यक्त्व आदिरूप परिणामोंसे च्युत होकर यदि मिथ्यात्व गुणस्थानमें आता है, तो उसके प्रारम्भसे ही अनन्तानुबन्धी चतुष्कका बन्ध होकर भी एक आवलिकाल तक अपकर्षणपूर्वक उसकी उदय-उदीरणा नहीं होती, ऐसा नियम है। अतः ऐसे जीवके एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धी क्रोधादिरूप परिणामके न होने पर भी मिथ्यात्व परिणाम निमित्तक मिथ्यात्व प्रकृतिका बन्ध होता है। साथ ही शेष १५ प्रकृतियोंका भी यथासम्भव बन्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार मिथ्यात्व बन्धका प्रधान कारण है, इसे पंडितजीने कई तरहसे सिद्ध किया है। इससे पूर्व प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग बन्धोंमें आदिके दो बन्धोंको योग निमित्तक और अन्य दो को कषाय निमित्तक बतलानेके आगमके अभिप्रायको स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षासे प्रतिपादन है और मिथ्यात्व आदि पाँचको बन्ध-कारण बतलानेमें नैगम, संग्रह और व्यवहार नयकी विवक्षा है। दोनों ही कथन नय-विवक्षासे अपनी-अपनी जगह आगमानुसार ही हैं। इस सम्बन्धमें किया गया विस्तृत विवेचन उनकी विशेषज्ञताको स्पष्ट प्रकट करता है।

२. मुनि-मार्गमें आज जो शैथिल्य दृष्टिगोचर हो रहा है, उसके सम्बन्धमें भी पंडितजी ने बड़े स्पष्ट रूपमें लिखा है कि साधुको आगमचक्षु कहा गया है। अतः उसे सर्वप्रथम आगमका अभ्यासी होना चाहिए। आत्मानुशासनकी गाथा १६९ आदिके द्वारा साधुको आगम-निष्णात होने पर बल देते हुए पंडितजीने बतलाया है कि जो साधु अपने मनरूपी मर्कटको अपने वशमें रखना चाहता है, उसे अपने चित्तको सम्यक् श्रुतके अभ्यासमें नियमसे लगाना चाहिए। रयणसार' के आधारसे आपने लिखा है कि जैसे श्रावक धर्ममें दान और पूजा मुख्य हैं। इनके बिना वह श्रावक नहीं हो सकता। वैसे ही मुनिधर्ममें ध्यान और अध्ययन ये दो कार्य मुख्य हैं। इनके बिना मुनि नहीं। इसी प्रसंगमें पंडितजीने लिखा है कि मोक्षमार्गमें आगम सर्वोपरि है। उसके हार्दको समझे बिना कोई भी संसारी प्राणी मोक्षमार्गके प्रथम सोपानस्वरूप सम्यक्दर्शनको भी प्राप्त नहीं कर सकता।

आत्मानुशासनके प्रारम्भमें सम्यक्दर्शनके जिन दस भेदोंका कथन किया गया है, उनमेंसे अवगाढ़ सम्यग्दर्शन तो सकल श्रुतके धारी श्रुतकेवलीके ही होता है। इससे ही साधुकी श्रुताधारता स्पष्ट हो जाती है। परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन केवलीके ही होता है। पर उनका यह केवलज्ञान श्रुतसे ही होता है और श्रुतका जनक होता है। यही कारण है कि समन्तभद्र स्वामीने भी गुरुको 'ज्ञान-ध्यान तपोरक्तः' बताते हुए उसे 'ज्ञान-रत' प्रथमतः कहा है।

इसी सन्दर्भमें मुनि-मार्गमें आये शैथिल्यके समर्थक उल्लेखोंको भी प्रस्तुत करके आचार्य अकलंक और आचार्य विद्यानन्दके विवेचनों द्वारा उनकी कड़ी समीक्षा की है जो उचित है।

इस संस्करणकी एक विशेषता यह है कि आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी द्वारा ढूंढारी भाषामें लिखी गयी टीकाको ही इसमें दिया गया है। उसे खड़ी बोलीमें परिवर्तित नहीं किया गया है। इसका मुख्य कारण उस भाषा-बोलीको सुरक्षित रखना है, क्योंकि ढूंढारी भाषा भी हिन्दी भाषाका एक उपभेद है। और विविध प्रदेशोंमें बोली जानेवाली इन हिन्दी भाषाओं (हिन्दी भाषाके उपभेदों) की सुरक्षा तभी सम्भव है, जब उनमें लिखे साहित्यको हम ज्यों-का-त्यों प्रकाशित करें। इस दिशामें पण्डितजी तथा श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान वाराणसीका यह प्रयत्न निश्चय ही श्लाघ्य है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org